International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

चैतन्य महाप्रभु और चैतन्य संप्रदाय; एक परिचय

रेखा मनोचा

शोध–छात्रा, हिन्दी विभाग

द्रविड़ियन विश्वविद्यालय,कुप्पम, आंध्र प्रदेश

शोध सार

भक्ति के प्रख्यात आचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु के व्यक्तित्व में प्रबल आकर्षण और उनके नेतृत्व में विलक्षण सम्मोहन होने पर भी श्री चैतन्य ने अपने नाम से किसी मत, पंथ या संप्रदाय का प्रवर्तन नहीं किया। श्री चैतन्य का जीवन एक धर्म परायण भक्त का जीवन है। गया धाम से लौटने के बाद उनके चारों ओर जो शिष्य मंडली एकत्रित हो गई थी, वह अनायास ही थी। वस्तुतः चैतन्य संप्रदाय का प्रवर्तन तो उनके शिष्यों द्वारा ही हुआ है। जिसमें विशेष रूप से वृंदावन के षड् गोस्वामीः सनातन, रूप, जीव, रघुनाथ भट्ट, रघुनाथ दास और गोपाल भट्ट अपनी विद्वता के कारण अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। इनकी शिक्षा को षड् गोस्वामियों ने ही शास्त्रीय रूप दिया। इन षड् गोस्वामियों में श्री रूप गोस्वामी सबसे महत्वपूर्ण है। श्री रूप गोस्वामी को श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्ति रस सिद्धांत की साक्षात मूर्ति माना गया है।

मुख्य शब्द

चैतन्य महाप्रभु, संप्रदाय, भक्ति, उन्मत्त, अष्टपद, वैष्णव, संस्कृत, उद्धार, उत्कर्ष, दुर्लभ, कृपा, प्रेम आदि।

भक्ति के प्रख्यात आचार्य, भारत के महान दार्शनिक संत महाप्रभु चैतन्य देव का प्रादुर्भाव विक्रमी 1542 (संवत् 1407) को बंगाल के नवद्वीप में फागुन मास की पूर्णिमा को

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

हुआ। इनके पिता पंडित जगन्नाथ मिश्र और माता शची देवी, इस अद्‌वितीय रूप–लावण्ययुक्त पुत्र को पाकर बहुत प्रसन्न हुए। अपनी अलौकिक बाल लीलाओं से अपने माता–पिता, भाई बंधु, परिजनों को आनंदित करते हुए जब इनकी अवस्था सात–आठ वर्ष की हुई तब इनके अग्रज विश्वरूपजी संसार त्याग वैरागी बन गए। कालांतर में इनके पिता परलोवासी हुए तब संपूर्ण घर गृहस्थी का भार इन्हीं के ऊपर आ पड़ा, इसलिए सोलह वर्ष की अल्प आयु में ही ये अध्यापक के अत्युच्च आसन पर आसीन हुए। इनकी पत्नी लक्ष्मीप्रिया अत्यंत रूपवती सुसंस्कारी स्त्री थी। कुछ काल के अनंतर ये द्रव्य उपार्जन तथा लोक शिक्षण हेतु राढ़ देश गए। राढ़ देश से लौटने पर इन्होंने पाया कि इनकी पत्नी लक्ष्मीप्रिया का देहांत हो चुका है। माता की प्रसन्नता के निमित्त उनके आग्रह करने पर विष्णुप्रिया जी के साथ इनका दूसरा विवाह हुआ। कुछ काल अध्यापक पद पर आसीन रहते हुए गृहस्थ जीवन का सुख भोगने के अनंतर इन्होंने पितृ ऋण से उऋण होने के निमित्त अपने पितरों का श्राद्ध करने के लिए गया जी की यात्रा की। वहीं पर श्री स्वामी ईश्वर पुरी जी ने इनके कान में कोई मंत्र फूंक दिया। उसको सुनते ही ये पागल हो गए और सदा प्रेम–वारूणी का पान किए हुए उसके मद में भूले से, उन्मत्त से, पागल से बने हुए ये सदा प्रलाप सा करने लगे। ऐसी दशा में पढ़ना पढ़ाना सब कुछ छूट गया। प्रेम में उन्मत्त होकर प्रेमी भक्तों के सहित अहर्निश श्री कृष्ण–कीर्तन करते रहना ही जीवन का एकमात्र व्यापार बन गया। पुराना जीवन एकदम परिवर्तित हो गया। सर्वप्रथम नाम–संकीर्तन का सौभाग्य–सुख उन भाग्यशाली विद्‌यार्थियों को प्राप्त हुआ जो उनकी पाठशाला में पढ़ते थे। अब श्री चैतन्य लौकिक पाठ न पढ़ाकर प्रेम पाठ पढ़ाने वाले अध्यापक बन गए थे।

श्री चैतन्य महाप्रभु के व्यक्तित्व में प्रबल आकर्षण और उनके नेतृत्व में विलक्षण सम्मोहन होने पर भी श्री चैतन्य ने अपने नाम से किसी मत, पंथ या संप्रदाय का प्रवर्तन नहीं किया। उनका जीवन प्रवाह इतना दुर्धर्ष था कि जो कोई उनके संपर्क में आया वह उस में बह गया। फलतः उनके चारों ओर संप्रदाय जैसी गरिमा इकट्ठी होती गई और अनजाने ही चैतन्य मत का उदय हो गया। चैतन्य का जीवन एक धर्म परायण भक्त का जीवन है जो भगवान के सान्निध्य को तो उत्सुक है किंतु उनके नाम पर किसी मठ की स्थापना में उनका विश्वास नहीं था। श्री चैतन्य ने किसी ग्रंथ का प्रणयन नहीं किया। श्रीमद्भागवत पुराण को ही वेदांत का भाष्य, व्याख्या और टीका मानकर स्वीकार किया। गया

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

धाम से लौटने के बाद उनके चारों ओर जो शिष्य मंडली या मित्र मंडली एकत्रित हो गई थी, वह अनायास ही थी। किसी योजनाबद्ध तरीके से यह संगठन नहीं हुआ था। वस्तुतः चैतन्य संप्रदाय का प्रवर्तन तो उनके शिष्यों द्वारा ही हुआ है। जिसमें विशेष रूप से वृंदावन के षड् गोस्वामीः सनातन, रूप, जीव, रघुनाथ भट्ट, रघुनाथ दास और गोपाल भट्ट अपनी विद्वता के कारण अत्यधिक प्रसिद्ध हैं।

अष्टपदों के चैतन्य शिक्षाष्टक से भिन्न श्री चैतन्य ने कोई ग्रंथ नहीं लिखा। इनकी शिक्षा को षड् गोस्वामियों ने ही शास्त्रीय रूप दिया। इन षड् गोस्वामियों में श्री रूप गोस्वामी सबसे महत्वपूर्ण है। श्री रूप गोस्वामी को दस मास तक श्री चैतन्य महाप्रभु के निकट रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। श्री चैतन्य की विचारधारा को जितनी गहराई से इन्होने समझा और प्रतिपादित किया वैसा अन्य कोई शिष्य न कर सका।

जय रूप सनातन भट्ट रघुनाथ।

श्री जीव गोपाल भट्ट दास रघुनाथ।

एइ छय गोसाईंर करि चरण वंदन।

जाहा हो ते विघ्न नाश अभीष्ट–पूरण।[1]

ये दो 'पयार' (बंगाल का सुप्रसिद्ध छंद) आज गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय के सभी आचार्यों द्वारा मंगलाचरण में पढ़े जाते हैं। श्री रूप, सनातन दोनों सहोदर भाई थे। जिनमें से सनातन अग्रज थे फिर भी श्री रूप का नाम इस जोड़े में पहले रखने की परंपरा रही है। इन छहों गोस्वामियों को ब्रजमंडल के लुप्त तीर्थों के पुनः उद्धार और भक्ति के लक्षण एवं लक्ष्य ग्रंथों की रचना का कार्य स्वंय श्री चैतन्य महाप्रभु ने सौंपा था।

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

श्री रूप और सनातन के पूर्वज कर्नाटक देश के रहने वाले थे। इनके प्रपितामह पद्मनाभ किसी कारण से कर्नाटक को छोड़कर नवहट्ट में आकर रहने लगे। इनके पाँच पुत्र और अट्ठारह कन्याएँ हुईं। सबसे छोटे पुत्र का नाम मुकुंद देव था। मुकुंद देव के श्रीकुमार देव नामक परम भागवत पुत्र हुए। वे प्रायः लेन–देन और वाणिज्य व्यापार का काम करते थे। इसी के निमित्त इन्हें यशोहर जिले के अंतर्गत फतेहाबाद में आना जाना पड़ता था। परंपरा में कुछ जातीय विरोध उत्पन्न होने पर श्रीकुमार देव नवहट्ट को छोड़कर फतेहाबाद में ही आकर रहने लगे। यहाँ आकर इनका विवाह मधाईपुर के हरिनारायण विशारद की कन्या रेवती देवी के साथ हुआ। रेवती देवी के गर्भ से तीन पुत्र हुए। वे तीनों ही परम भागवत, वैष्णव समाज के सर्वोत्कृष्ट शिरोमणि हुए। माता–पिता ने इनके नाम अमर, संतोष और अनूप रखें। बाद में ये ही रूप, सनातन और वल्लभ इन नामों से प्रसिद्ध हुए।

पिता श्री कुमार देव अपने तीनों पुत्रों को सुयोग्य पंड़ित बनाना चाहते थे। नवहट्ट के प्रसिद्ध पंड़ित श्री सर्वानंद सिद्धांतवाचस्पति से उन्होंने अपने तीनों पुत्रों को संस्कृत की शिक्षा दिलाई। उन दिनों फारसी राजभाषा थी। राजकीय कार्यों में फारसी का ही बोलबाला था। फारसी पढ़ा हुआ ही सभ्य और विद्वान समझा जाता था। उसे ही राज्य में उच्च पदों पर नौकरी मिल सकती थी। इस कारण श्री रूप, सनातन के पिताजी अपने पुत्रों को संस्कृत के साथ–साथ फारसी का भी ज्ञान दिलाना चाहते थे इसलिए सप्त ग्राम के भूमि अधिकारी सैयद फकरूद्दीन से इन्हें अरबी–फारसी की शिक्षा दिलवाई। ये मेधावी और तीक्ष्ण बुद्धि के तो बाल्यकाल से ही थे इसलिए थोड़े ही दिनों में संस्कृत, अरबी और फारसी के अच्छे पंड़ित हो गए। उन दिनों मालाधर वंसु (गुणराज खान) गौड़ के बादशाह हुसैन शाह के राज मंत्री थे। वे गुणग्राही तथा कवि हृदय के थे। उन्होंने 'श्री कृष्ण विजय' नामक एक बंगला काव्य की रचना की थी। जिसका 'नंदनंदन कृष्ण मोर प्राणनाथ' यह पद महाप्रभु को बहुत ही पसंद था। उनसे इनका परिचय हो गया। वे इनकी कुशाग्र बुद्धि और प्रत्युत्पन्न मति से बहुत ही संतुष्ट हुए और इन्हें राज दरबार में नौकरी दिलवा दी। ये अपनी बुद्धि की तीक्ष्णता और कार्य पटुता के कारण शीघ्र ही बादशाह के परम कृपा पात्र बन गए और बादशाह ने प्रसन्न होकर इन्हें अपना राज मंत्री बनाया। पद वृद्धि के साथ इनकी वैभव वृद्धि भी होने लेगी, साथ ही हिन्दू धर्म की कट्टरता भी कम होने लगी। इन्हें मुसलमानों से कोई परहेज नहीं था। ब्राह्मण होने पर भी इनकी वेशभूषा तथा खानपान

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

मुसलमान रईसों के समान ही था। यहाँ तक कि बादशाह ने इनके नाम मुसलमानों के–से ही रख दिए। बादशाह सनातन को दबिर खास और रूप को शाकिर मलिक के नाम से पुकारते थे। राज्य में ये इन्हीं नामों से प्रसिद्ध थे। इनके पुराने नाम को कोई नहीं जानता था। इन्होंने अपने रहने के निमित्त गौड़ के समीप ही रामकेलि नाम से एक नया नगर बसाया और उसी में अपना सुंदर–सा महल बना कर खूब ठाठ–बाट से रहने लगे। इनके आचरण चाहे कैसे भी हो किंतु ये संस्कृत के विद्वान पंड़ितों का तथा साधु वैष्णवों का सदा सम्मान करते थे। रामकेलि से थोड़ी दूरी पर ही इन्होंने कन्हाई नाट्यशाला नाम से एक मूर्ति संग्रहालय बनवाया था। जिसमें श्री कृष्ण की लीला संबंधी अनेक प्रकार की मूर्तियाँ थी।

निरंतर साधु–संग तथा शास्त्र–चिंतन से इन लोगों को अपने अपार वैभव से वैराग्य होने लगा। इनका मन किसी को आत्मसमर्पण करने के लिए अत्यंत ही व्याकुल होने लगा। अब इनकी प्रवृति धीरे–धीरे कर्म की ओर होने लगी। उस समय इन लोगों ने महाप्रभु की प्रशंसा सुनी। उस समय महाप्रभु का भगवन्नाम संकीर्तन एक नई वस्तु थी। अब तक लोगों की ऐसी धारणा थी कि जो समाज के बंधनों का परित्याग कर देने के कारण एक बार समाज से पतित हो गया, वह सदा के लिए पतित बन गया। उसके उद्धार का कोई उपाय नहीं है। महाप्रभु ने इस मान्यता का जोरों से खंड़न किया। वे इस बात पर जोर देने लगे कि–

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।

साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः।।गीता(9/30)[2]

चाहे कितना भी बड़ा पापी क्यों न रहा हो, यदि अनन्य भाव से भगवान का भजन करता है, वह परम साधु ही मानने योग्य है, क्योंकि अब उसने उत्तम निश्चय कर लिया। भगवान में जिसका मन लग गया है वह फिर पापी रह ही कैसे सकता है। एक बार प्रभु की शरण में जाने से ही संपूर्ण पाप जलकर भस्म हो जाते हैं। भगवान नाम के प्रभाव से घोर पापी से पापी भी प्रभु के चरण कमल तक पहुँच सकते हैं। प्रभु के ऐसे उदार और

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

सर्वभूत हितकारी भावों को सुनकर इन दोनो को भी अपने पूर्व जीवन का पश्चाताप होने लगा और गौड़ के बादशाह से छिपकर इन्होंने एक पत्र प्रभु के लिए नवद्वीप भेजा। इसमें इन्होंने अपनी पतित अवस्था का वर्णन करके अपने उद्धार का उपाय जानना चाहा। प्रभु ने इनके पत्र के उत्तर में यह श्लोक लिखकर इनके पास भेज दिया–

परव्यसनिनी नारी व्यग्रापि गृहकर्मसु।

तमेवास्वादयत्यन्तर्नवसगरसायनम्।।[3]

अर्थात् पर पुरूष से संबंध रखने वाली व्यभिचारिणी स्त्री बाहर से घर के कार्यों में व्यस्त रह कर भी भीतर–ही–भीतर उस नूतन जार–संगम रूपी रसायन का ही आस्वादन करती रहती है। इसी प्रकार बाहर से तो तुम राज–काज को भले ही करते रहो किंतु हृदय से सदा उन्हीं हृदय रमण के साथ क्रीड़ा विहार करते रहो। प्रभु के ऐसे अनुपम आदेश को पाकर इन लोगों की प्रभु–दर्शन की लालसा और भी अधिक बढ़ने लगी। वृंदावन जाने की इच्छा से प्रभु स्वयं ही रामकेलि में पधारे तब ये मन ही मन प्रभु की भक्त वत्सलता की प्रशंसा करने लगे। लोगों के समक्ष ये प्रभु से स्पष्ट तो मिल नहीं सकते थे इसलिए अर्द्ध रात्रि के समय ये साधारण वेश में श्री चैतन्य प्रभु के निवास स्थान पर पहुँचे। इन्होंने नित्यानंद जी और हरिदास जी को जगा कर अपना परिचय दिया और प्रभु से मिलने की इच्छा व्यक्त की। तब नित्यानंद जी परम प्रसन्न हुए और उन्होंने धीरे से जाकर चैतन्य प्रभु को जगाया और दोनों भाइयों के आने का संवाद दिया। प्रभु ने उसी समय दोनों को अपने समीप बुलाने की आज्ञा दी। प्रभु की आज्ञा पाकर ये दोनों पुलकित होकर दीनता के साथ प्रभु के समीप पहुँचे और व्याकुलता के साथ प्रभु के पैरों में गिरकर जोरों से रूदन करने लगे। गुरू शिष्य का यह अद्भुत मिलन था। प्रभु अपने कोमल करों से बार–बार इन्हें उठाते थे किंतु ये प्रेम के कारण प्रभु के चरण–कमलों को छोड़ना ही नहीं चाहते थे। प्रभु ने इन्हें समझाया तुम दोनों ही परम भागवत हो। मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था। रामकेलि में आने का मेरा कोई दूसरा अभिप्राय नहीं था। यहाँ तो मैं केवल

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

तुम दोनों भाइयों के दर्शनों के लिए ही आया हूँ। आज से तुम्हारा दूसरा जन्म हुआ। आज से तुम्हारे नाम रूप और सनातन हुए। इस प्रकार श्री चैतन्य प्रभु से भेंट कर और नूतन जन्म पाकर दोनों भाई प्रभु से विदा हुए। प्रभु के दर्शनों से ही इनके भीतर छिपी हुई भावुकता एवं भगवद्भक्ति प्रस्फुटित हो उठी। साधु संग से ही मनुष्य शरीर की सार्थकता का बोध होता है और तभी अपने गत जीवन की निरर्थकता का भान होने लगता है। इन्हें अपने पूर्व कृत्यों पर पश्चाताप होने लगा। साधु संग का प्रधान फल पूर्वकृत पापों का पश्चाताप ही है। जब भी पूर्व कृत कर्मों के लिए हृदय में घबराहट हो और प्रभु प्राप्ति के लिए हृदय छटपटाता–सा रहे तब समझना चाहिए कि साधु संगति का वास्तविक फल मिल गया।[4]

ये दोनों ही भाई भाग्यवान थे, प्रभु के दर्शन मात्र से ही इनकी कायापलट हो गई। प्रभु के दर्शन करते ही इन्हें पद–प्रतिष्ठा, परिवार, पैसा और प्रिय पदार्थों से घृणा हो गई। जिस प्रतिष्ठित पद के लिए संसारी लोग कुछ भी करने को तैयार हो जाते हैं, वही राज–मंत्री का पद इन्हें घोर बंधन–सा प्रतीत होने लगा। श्री सनातन जी गौड़ चले जाते हैं किंतु श्री रूप जी लौटकर गौड़ नहीं गए। वे अपनी धन–संपत्ति को नाव पर लादकर दस–बीस नौकरों के साथ अपनी जन्मभूमि फतेहाबाद चले गए। वहाँ जाकर अपना आधा धन इन्होंने ब्राह्मण और गरीबों में बांट दिया। कुछ परिवार के लिए रख दिया और दस हजार रूपए गौड़ में एक मोदी की दुकान पर जमा कर दिए।

इधर श्री सनातन जी राजधानी लौट आए किंतु राज–काज करने में असमर्थ हो गए। उनकी दशा बहुत विचित्र हो गई। वे राज–काज से त्यागपत्र देना चाहते थे परंतु यह भी जानते थे कि बादशाह यह कदापि स्वीकार नहीं करेंगें। यह सब सोचकर उन्होंने बादशाह को संदेश भेजा कि वह बीमार है, राज–काज करने में असमर्थ है इसलिए कुछ समय के लिए अवकाश दें। बादशाह ने श्री सनातन जी के इलाज के लिए वैद्य भेजा तो उसने वापस आकर बादशाह को बताया कि उन्हें कोई रोग नहीं है, वह तो भले चंगे बैठे कथा सुन रहे हैं। बादशाह यह सुनकर आग–बबूला हो उठे और सनातन जी के पास

पहुँचे। श्री सनातन जी ने जब राज–काज संभालने में असमर्थता जताई तो बादशाह ने उन्हें कारावास में डाल दिया।

उधर श्री रूपजी ने अपने भाई के राजबंदी होने का समाचार सुनने से पूर्व ही श्री चैतन्य महाप्रभु की खोज में दो नौकर पुरी भेजे थे। उन्होंने आकर समाचार दिया कि प्रभु तो वन मार्ग से वृंदावन चले गए हैं। यह समाचार सुनकर श्री रूप अपने छोटे भाई अनूप (श्री वल्लभ) को साथ लेकर प्रभु की खोज में वृंदावन की ओर चल पड़े। चलते समय अपने भाई श्री सनातन के पास पत्र भेजा कि हम श्री चैतन्य की खोज में वृंदावन जा रहे हैं। अमुक मोदी के पास मैंने आपके निमित्त दस हजार रूपए जमा कर दिए हैं। यदि कारावास मुक्ति में उनका कुछ उपयोग हो सके तो कीजिए और मुक्त होकर शीघ्र श्री चैतन्य के दर्शन कीजिए।

गुप्त रीति से यह पत्र श्री सनातन जी के पास पहुँचा। पत्र पढ़कर उनका चित्त श्री चैतन्य चरणों के दर्शनों के लिए तड़पने लगा। वे जेल से मुक्त होने का उपाय सोचने लगे। उधर श्री रूप जी अपने भाई अनूप जी के साथ प्रभु की खोज करते हुए काशी होकर प्रयाग पहुँचे। वहीं उन्हें महाप्रभु चैतन्य देव के दर्शन हुए। वे भक्तों के साथ कीर्तन करते हुए बिंदु–माधव जी के दर्शन के लिए जा रहे थे। दोनों भाई भी उस भीड़ के साथ–साथ ही हो लिए। महाप्रभु को जो भी नृत्य करते हुए देखता, वही उनके साथ चल पड़ता। वहाँ से लौटकर प्रभु एक दक्षिण ब्राह्मण के घर भोजन करने गए। ये दोनों भाई प्रभु के पीछे उस ब्राह्मण के घर में घुस गए। श्री रूप और अनूप दोनों भाईयों ने अंदर जाकर प्रभु के चरणों में साष्टांग प्रणाम किया। प्रभु ने उन्हें आशीर्वाद दिए। अनूप का परिचय पूछा और सनातन के समाचार जानने चाहे। श्री रूप ने सब वृतांत सुनाकर कहा, "वे आपके चरणों के दर्शनों के लिए काल–कोठरी में रहकर तड़प रहे होंगे।" प्रभु ने हँसते हुए कहा, "अब वे कारावास में कहाँ, अब तो वे वहाँ से छूट गए होंगें। भगवान चाहेंगे तो शीघ्र ही तुम्हारी उन से भेंट होगी। अब तुम कुछ काल यहीं मेरे पास रहो।" यह कहकर प्रभु ने अपने पास ही इन दोनों भाइयों को रहने के लिए स्थान दे दिया।

प्रयाग में श्री रूप अपने भाई अनूप के साथ दस दिनों तक रहे। श्री रूप की दृष्टि में चैतन्य देव हाड़–मास के शरीरधारी जीव नहीं थे। वे तो उनके लिए प्रेम के साकार स्वरूप थे। उन्होंने महाप्रभु चैतन्य को अवतारी सिद्ध करने की चेष्टा नहीं की। अपने

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

गुरू को श्री कृष्ण का विग्रह समझकर ही उन्होंने श्री कृष्ण की लीलाओं का कथन किया है। श्री रूप ने वहाँ त्रिवेणी के तट पर दस दिन रहकर महाप्रभु चैतन्य से भक्ति के अत्यंत गूढ़ रहस्यों को समझा और उसी का अपने अनेक ग्रंथों में वर्णन किया। महाप्रभु ने श्री रूप को वैराग्य का उपदेश दिया और भक्ति की महिमा समझाई। उनके अनुसार संसार में प्रयत्न करने पर सब कुछ प्राप्त हो सकता है किंतु भक्ति की प्राप्ति होना अत्यंत ही दुर्लभ है। तत्पश्चात् उन्होंने श्री रूप को कहा कि तुम कवि हृदय हो, बुद्धिमान हो, सरल हो, भगवत कृपा के अधिकारी हो। अतः इन भावों को विस्तार के साथ वर्णन करके भक्तों के सम्मुख रखो। इस प्रकार महाप्रभु ने उन्हें वृंदावन जाने की आज्ञा दी और कहा कि वहाँ लुप्त पड़े तीर्थों को प्रकट करने की कोशिश करो।[5]

श्री रूप में बचपन से कवि हृदय हिलोरे ले रहा था। गृहत्याग से पहले ही 'हंस दूत' और 'उद्धव संदेश' नामक नाटकों की रचना उन्होंने कर दी थी। गृहत्याग के पश्चात उन्होंने एक नाटक की रचना करनी चाही जिसमें ब्रज की लाला एवं द्वारिका लीला दोनों का समावेश हो। परंतु उन्हें स्वप्न में, सत्यभामा ने, ब्रज लीला एवं द्वारिका लीला के लिए अलग–अलग नाटक लिखने का आदेश दिया। श्री रूप ने ब्रज लाला वाले नाटक का नाम 'विदग्ध माधव' और द्वारिका लीला वाले नाटक का नाम 'ललित माधव' रखा। नीलाचल में श्री रूप को महाप्रभु के साथ दीर्घकालीन सांनिध्य प्राप्त हुआ। उनके संग की वजह से श्री रूप की लेखनी से रस का वह अजस्र और अमूल्य स्त्रोत फूट पड़ा जिसकी विश्व भर के साहित्य में कोई तुलना नहीं। जिसने मानव के लिए उसके चरम उत्कर्ष का मार्ग प्रशस्त किया।

श्री रूप के नीलाचल में दस माह बीतने के पश्चात महाप्रभु ने उन्हें वृंदावन जाने की आज्ञा दी एवं कहा–"ब्रज जाकर रस शास्त्र का निरूपण और ब्रज के लुप्त तीर्थों का उद्धार एवं प्रचार करना। साथ ही कृष्ण–सेवा एवं भक्ति–रस का भी प्रचार करना। सन् 1519 में महाप्रभु की आज्ञा अनुसार श्री रूप वृंदावन लौट आए और लुप्त तीर्थों के उद्धार कार्य में जुट गए।

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

श्री रूप गोस्वामी से दिग्विजयी पंड़ित और आचार्यगण शास्त्रार्थ करने आते थे। श्री रूप बिना तर्क किए उन्हें विजय पत्र लिख देते थे। ग्रंथों की रचना एवं लुप्त तीर्थों का उद्धार कार्य करते–करते श्री रूप अपनी आंतरिक साधना भी करते रहते। संवत् 1640 (सन् 1563) की श्रावण शुक्ल द्वादशी को श्री रूप गोस्वामी अंतर्धान हो गए। उन्होंने संसार त्याग कर नित्य वृंदावन में प्रवेश किया। श्री रूप गोस्वामी को श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्ति रस सिद्धांत की साक्षात मूर्ति माना गया है।

श्री रूप गोस्वामी द्वारा रचित ग्रंथ–

श्री जीव गोस्वामी ने 'लघुवैष्णवतोषणी' में अपने वंश का परिचय देते समय श्री रूप गोस्वामी के ग्रंथों की एक तालिका दी है, जिसमें इनके ग्रंथों का उल्लेख है–

1) हंसदूत, उद्धव–संदेश और अष्टदश लीला–छंद नामक काव्य।

2) स्तवमाला, उत्कलिकावली, गोविंद–विरूदावली और प्रेमेन्दुसागर नामक स्तोत्र–ग्रंथ।

3) विदग्ध–माधव और ललित–माधव नामक नाटक।

4) दानकेलि कौमुदी नामक भणिक।

5) श्री भक्तिरसामृत सिंधु और उज्ज्वल–नीलमणि नामक रस ग्रंथ।

6) मथुरा–महिमा, नाटक चंद्रिका, पद्मावली और लघुभागवतामृत नामक संग्रह ग्रंथ।

इनके अतिरिक्त 'भक्ति रत्नाकर' ग्रंथ में इनके द्वारा रचित चार अन्य ग्रंथों के नाम भी उपलब्ध हैं–

1) श्रीगणोद्देश दीपिका, 2) प्रयुक्ताख्यात चन्द्रिका, 3) कृष्ण–जन्म–तिथि विधि, 4) अष्टकालिक श्लोकावलि।

संदर्भ

1) श्रीश्री भक्तिरसामृतसिंधु, संपादन एवं अनुवादः प्रो. प्रेमलता शर्मा, प्रथम संस्करण 1998, पृ. सं0 17

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

2) श्रीश्रीचैतन्य–चरितावली, लेखक : प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, प्रकाशक : गीता प्रैस गोरखपुर पृ. सं0 464

3) वही, पृ. सं0 465

4) वही, पृ. सं0 480

5) ब्रज जाइ रस शास्त्र कर निरूपण।

लुप्त सब तीर्थ तार करिह प्रचारण।।

कृष्ण सेवा रस भक्ति कलह प्रचार।

आमियो देखिते ताहा जाब इक बार।।

"(चैतन्य–चरितामृत 3/1/218–219)"।